Chapter सोलह

भगवान् की विभूतियाँ

इस अध्याय में भगवान् कृष्ण अपने प्रकट ऐश्वर्यों या विभूतियों का वर्णन ज्ञान, बल, प्रभाव इत्यादि विशेष शक्तियों के रूप में करते हैं।

श्री उद्धव ने समस्त तीर्थस्थानों के चरम आश्रय भगवान् कृष्ण की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया है, ''भगवान् का न तो आदि है, न अन्त। वे सभी जीवों के जन्म, पालन तथा संहार के कारण हैं। वे सभी जीवों की आत्मा हैं और सभी जीवित प्राणियों के भीतर गुप्त रूप से वास करते हुए वे

सारी वस्तुएँ देखते रहते हैं। किन्तु बद्धजीव उनकी बहिरंगा शक्ति से मोहग्रस्त होने के कारण उनका दर्शन नहीं कर पाते।'' भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर ऐसी स्तुति अर्पित करने के बाद, श्री उद्धव ने स्वर्ग, पृथ्वी, नरक तथा समस्त दिशाओं में भगवान् की विविध विभूतियों को जानने की इच्छा व्यक्त की। तब श्रीकृष्ण ने इन सारी विभूतियों का वर्णन किया और इसके बाद यह टिप्पणी की कि सारा बल, सौन्दर्य, यश, ऐश्वर्य, दीनता, दान, आकर्षण, सौभाग्य, वीरता, सहिष्णुता तथा ज्ञान जहाँ कहीं वे दिखते हैं, सब उन्हीं के अंश (विस्तार) हैं। इसलिए यह ठीक से नहीं कहा जा सकता कि किसी भौतिक वस्तु में ये विभूतियाँ वास्तव में रहती हैं। ऐसी धारणाएँ द्वैत के कारण हैं जिससे ऐसी वस्तु उत्पन्न होती है, जो काल्पनिक होती है जैसे कि आकाश कुसुम। भौतिक विभूतियाँ सारत: सत्य नहीं हैं अतएव इनके चिन्तन में अत्यधिक लीन नहीं होना चाहिए। भगवान् के शुद्ध भक्त अपनी बुद्धि का सही सही उपयोग अपनी वाणी, मन तथा प्राण के कार्यकलापों के नियमन में लगाते हैं और इस तरह कृष्णभावनामृत में रह कर अपना अस्तित्व सिद्ध करते हैं।

श्रीउद्धव उवाच
त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् ।
सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; त्वम्—तुम हो; ब्रह्म—महानतम; परमम्—परम; साक्षात्—स्वयं; अनादि—आदिरहित; अन्तम्—अन्तरहित; अपावृतम्—किसी वस्तु से सीमित नहीं; सर्वेषाम्—समस्त; अपि—निस्सन्देह; भावानाम्—उपस्थित वस्तुओं में; त्राण—रक्षक; स्थिति—जीवनदाता; अप्यय—संहार; उद्भवः—तथा सृष्टि।

श्री उद्धव ने कहा : हे प्रभु, आप अनादि तथा अनन्त, साक्षात् परब्रह्म तथा अन्य किसी वस्तु से सीमित नहीं हैं। आप सभी वस्तुओं के रक्षक तथा जीवनदाता, उनके संहार तथा सृष्टि हैं।

तात्पर्य : *ब्रह्म* का अर्थ है सर्वश्रेष्ठ एवं हर वस्तु का कारण। यहाँ पर उद्धव ने भगवान् को *परमम्* अर्थात् परब्रह्म के रूप में सम्बोधित किया है क्योंकि उनका भगवान् रूप, परब्रह्म का सर्वोच्च स्वरूप और असीम आध्यात्मिक ऐश्वर्यों का आश्रय है। सामान्य जीवों से भिन्न रूप में भगवान् के ऐश्वर्यों को काल की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। इस तरह भगवान् *अनाद्यन्तम्* और *अपावृतम्* अर्थात् किसी श्रेष्ठ या समान शक्ति द्वारा रोके जाने वाले नहीं हैं। इस भौतिक जगत का सारा ऐश्वर्य भगवान् में ही टिका है क्योंकि वे ही भौतिक जगत का रक्षण, पालन, सृजन तथा संहार कर सकते हैं। इस अध्याय में

श्री उद्धव भगवान् से उनके आध्यात्मिक तथा भौतिक ऐश्वर्यों के बारे में पूछते हैं जिससे परब्रह्म रूप में भगवान् की स्थिति के विषय में वे पुन: अपना विचार दृढ़ कर सकें। भौतिक जगत के चरम स्रष्टा भगवान् विष्णु भी भगवान् कृष्ण के अंश हैं, अतएव श्री उद्धव अपने अन्तरंग मित्र के अद्वितीय पद के बारे में पूर्णतया आश्वस्त हो लेना चाहते हैं।

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभि: ।
उपासते त्वां भगवन्याथातथ्येन ब्राह्मणा: ॥ २ ॥

शब्दार्थ

उच्च—श्रेष्ठ; अवचेषु—तथा निम्न; भूतेषु—सृजित वस्तुओं तथा जीवों में; दुर्ज्ञेयम्—समझ पाना कठिन; अकृत-आत्मभि:—अपवित्रों द्वारा; उपासते—वे पूजा करते हैं; त्वाम्—तुम्हारी; भगवन्—हे प्रभु; यथा-तथ्येन—वास्तव में; ब्राह्मणा:—वैदिक मतानुयायी।

हे प्रभु, यद्यपि अपवित्र लोगों के लिए यह समझ पाना कठिन है कि आप समस्त उच्च तथा निम्न सृष्टियों में स्थित हैं, किन्तु वे ब्राह्मण जो वैदिक मत को भलीभाँति जानते हैं आपकी वास्तविक रूप में पूजा करते हैं।

तात्पर्य : सन्त पुरुषों के आचरण को भी प्रमाण माना जाता है इसीलिए यहाँ पर कहा गया है कि यद्यपि अज्ञानी, अपवित्र व्यक्ति भगवान् के सर्वव्यापी स्वरूप के समक्ष विमोहित हो जाते हैं, किन्तु शुद्ध तथा स्पष्ट चेतना वाले लोग भगवान् को यथारूप में पूजते हैं। इस अध्याय में श्री उद्धव भगवान् के ऐश्वर्यों या विभूतियों के विषय में जिज्ञासा करते हैं। यहाँ पर *उच्चवचेषु भूतेषु* शब्द स्पष्ट रूप से भगवान् के बाह्य ऐश्वर्यों के द्योतक हैं, जो कि भौतिक जगत में प्रकट होते हैं। साधु ब्राह्मण या वैष्णवजन समस्त वस्तुओं के भीतर भगवान् कृष्ण की पूजा करते हैं; फिर भी वे भगवान् की सृष्टि में विविधता को पहचानते हैं। उदाहरणार्थ, अर्चाविग्रह की पूजा करते समय वे अच्छे से अच्छे फूल, फल तथा आभूषण चुन कर भगवान् को सजाते हैं। इसी तरह यद्यपि भगवान् प्रत्येक बद्धात्मा के हृदय में उपस्थित हैं, किन्तु एक भक्त उस बद्धात्मा के प्रति अधिक ध्यान देता है, जो भगवान् श्रीकृष्ण के सन्देश में रुचि रखता है। यद्यपि भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं, किन्तु भक्तगण भगवान् की सेवा के निमित्त, *उच्च* तथा निम्न (*अवचेषु*) सृष्टियों में भगवान् की उपस्थिति में अन्तर बरतते हैं।

येषु येषु च भूतेषु भक्त्या त्वां परमर्षय: ।

उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥ ३॥

शब्दार्थ

येषु येषु—जिन जिन; च—तथा; भूतेषु—स्वरूपों में; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; त्वाम्—तुमको; परम-ऋषयः—महर्षिगण; उपासीनाः—पूजा करने वाले; प्रपद्यन्ते—प्राप्त करते हैं; संसिद्धिम्—सिद्धि; तत्—वह; वदस्व—कृपया कहें; मे—मुझसे।

कृपया मुझसे उन सिद्धियों को बतलायें जिन्हें महर्षिगण आपकी भक्तिपूर्वक पूजा द्वारा प्राप्त करते हैं। कृपया यह भी बतलायें कि वे आपके किन विविध रूपों की पूजा करते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर श्री उद्धव भगवान् के आध्यात्मिक ऐश्वर्यों के विषय में पूछते हैं, जो मुख्यतया उनके *विष्णु तत्त्व* अंशों जैसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूपों में होता है। भगवान् के इन विभिन्न स्वांशों की पूजा करके मनुष्य विशिष्ट सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है और श्री उद्धव यही जानना चाहते हैं।

गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ।
न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥ ४॥

शब्दार्थ

गूढः—गुप्त; चरसि—लगे रहते हैं; भूत-आत्मा—परमात्मा; भूतानाम्—जीवों के; भूत-भावन—हे जीवों के पालनकर्ता; न—नहीं; त्वाम्—तुमको; पश्यन्ति—देखते हैं; भूतानि—जीव; पश्यन्तम्—देखते हुए; मोहितानि—मोहग्रस्त; ते—तुम्हारे द्वारा।

हे सर्वपालक प्रभु, यद्यपि आप सभी जीवों के परमात्मा हैं किन्तु आप गुप्त रहते हैं। इस तरह आपके द्वारा मोहग्रस्त बनाये जाकर सारे जीव आपको देख नहीं पाते यद्यपि आप उन्हें देखते रहते हैं।

तात्पर्य : भगवान् हर वस्तु के भीतर परमात्मा रूप में विद्यमान हैं। वे विभिन्न अवतारों के रूप में भी प्रकट होते हैं या कभी कभी भक्त को अवतार रूप में कार्य करने की शक्ति प्रदान करते हैं। अभक्तों को ऐसे समस्त रूपों का कोई पता नहीं रहता। मोहग्रस्त बद्धजीव सोचते हैं कि परम भोक्ता श्रीकृष्ण तो उनकी इन्द्रियतृप्ति के भोगार्थ हैं। अभक्तगण भगवान् से विशिष्ट वर माँगने के लिए उनकी स्तुति करने और भगवान् की सृष्टि को निजी सम्पत्ति मानने के कारण वे भगवान् के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पाते। इसीलिए वे मूर्ख तथा मोहग्रस्त बने रहते हैं। इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु का सृजन, पालन तथा संहार होता है। इस प्रकार परमात्मा ही भौतिक जगत के एकमात्र वास्तविक नियन्ता हैं। दुर्भाग्यवश जब परमात्मा अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए विविध अवतारों में प्रकट होते हैं, तो अज्ञानी व्यक्ति सोचते हैं कि परमात्मा भौतिक गुणों की मात्र एक और सृष्टि हैं। जैसाकि इस श्लोक में

कहा गया है वे उस व्यक्ति को नहीं देख पाते जो उन्हें देख रहा है और इस तरह वे मोहग्रस्त बने रहते हैं।

याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां
विभूतयो दिक्षु महाविभूते ।
ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते
नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

याः काः—जो भी; च—भी; भूमौ—पृथ्वी पर; दिवि—स्वर्ग में; वै—निस्सन्देह; रसायाम्—नरक में; विभूतयः—शक्तियाँ; दिक्षु—सारी दिशाओं में; महा-विभूते—हे परमशक्तिमान; ताः—वे; मह्यम्—मुझसे; आख्याहि—कृपया बतलायें; अनुभावितः—प्रकट, व्यक्त; ते—तुम्हारे द्वारा; नमामि—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; ते—तुम्हारे; तीर्थ-पद—समस्त तीर्थस्थलों के निवास; अङ्घ्रि-पद्मम्—चरणकमलों पर।

हे परमशक्तिमान प्रभु, कृपा करके मुझे अपनी वे असंख्य शक्तियाँ बतलायें जिन्हें आप पृथ्वी में, स्वर्ग में, नरक में तथा समस्त दिशाओं में प्रकट करते हैं। मैं आपके उन चरणकमलों को सादर नमस्कार करता हूँ जो समस्त तीर्थस्थलों के आश्रय हैं।

तात्पर्य : उद्धव यहाँ पर भगवान् की उन भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के बारे में जिज्ञासा करते हैं जिस रूप में वे हमारे ब्रह्माण्ड में प्रकट होती हैं। जिस प्रकार शहरों में रह रहे सामान्य पशु या कीड़े मनुष्य की वैज्ञानिक, सांस्कृतिक या सैन्य उपलब्धियों का अनुमान नहीं लगा सकते, उसी तरह मूर्ख भौतिकतावादी लोग भी भगवान् के अपार ऐश्वर्यों को नहीं पहचान पाते यद्यपि वे हमारे ब्रह्माण्ड में ही प्रकट होते हैं। यहाँ पर उद्धव सामान्यजनों की जानकारी के लिए ही भगवान् से अनुरोध कर रहे हैं कि वे यह प्रकट करें कि वे किसी तरह और किन रूपों में अपनी शक्तियों का विस्तार करते हैं। जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है, भगवान् सारे जगत के अनिवार्य अवयव रूप हैं, अतएव कोई भी विराट या ऐश्वर्यवान् स्वरूप साक्षात् भगवान् पर ही टिका हुआ हो सकता है।

श्रीभगवानुवाच
एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदां वर ।
युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; एवम्—इस प्रकार; एतत्—यह; अहम्—मैं; पृष्टः—पूछा गया; प्रश्नम्—प्रश्न; प्रश्न-विदाम्—प्रश्न करने में पटु लोगों के; वर—तुम जो कि श्रेष्ठ हो; युयुत्सुना—युद्ध करने की इच्छा रखने वालों के द्वारा; विनशने—कुरुक्षेत्र के युद्ध में; सपत्नैः—अपने प्रतिद्वन्दियों या शत्रुओं समेत; अर्जुनेन—अर्जुन द्वारा; वै—निस्सन्देह।

भगवान् ने कहा : हे प्रश्नकर्ताओं में श्रेष्ठ, अर्जुन ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों से युद्ध करने की इच्छा से कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में मुझसे यही प्रश्न पूछा था जिसे तुम पूछने जा रहे हो।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण प्रसन्न थे कि उनके दो मित्रों, अर्जुन तथा उद्धव, ने भगवान् के ऐश्वर्यों के विषय में एक जैसा प्रश्न पूछा। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि उनके दो प्रिय मित्रों ने उनसे बिल्कुल एक जैसा प्रश्न पूछा।

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ।
ततो निवृत्तो हन्ताहं हतोऽयमिति लौकिकः ॥ ७॥

शब्दार्थ

ज्ञात्वा—जान कर; ज्ञाति—अपने सम्बन्धियों से; वधम्—वध; गर्ह्यम्—गर्हित, निन्दनीय; अधर्मम्—अधर्म; राज्य—राज्य प्राप्त करने के लिए; हेतुकम्—प्रेरणा; ततः—ऐसे कर्म से; निवृत्तः—अवकाशप्राप्त; हरता—मारने वाला; अहम्—मैं हूँ; हतः—मारा हुआ; अयम्—सम्बन्धियों का यह दल; इति—इस प्रकार; लौकिकः—संसारी।

कुरुक्षेत्र युद्धस्थल में अर्जुन ने सोचा कि अपने सम्बन्धियों का वध करना अत्यन्त गर्हित एवं अधार्मिक कार्य है, जो राज्य प्राप्त करने की उसकी इच्छा से प्रेरित है। अतएव यह सोच कर कि मैं अपने सम्बन्धियों का मारने वाला होऊँगा और वे विनष्ट हो जायेंगे, वह युद्ध से विरत होना चाहता था। इस तरह वह संसारी चेतना से दुखी था।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण उन परिस्थितियों को बतला रहे हैं जिनके अन्तर्गत श्री अर्जुन ने प्रश्न किया था।

स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ।
अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८॥

शब्दार्थ

सः—वह; तदा—उस समय; पुरुष-व्याघ्रः—पुरुषों में बाघ; युक्त्या—तर्क द्वारा; मे—मेरे द्वारा; प्रतिबोधितः—सही ज्ञान दिया गया; अभ्यभाषत—प्रश्न किया; माम्—मुझसे; एवम्—इस प्रकार; यथा—जिस तरह; त्वम्—तुम; रण—युद्ध के; मूर्धनि—मोर्चे में।

उस समय मैंने पुरुषों में व्याघ्र अर्जुन को तर्क द्वारा समझाया और युद्ध के मोर्चे में ही अर्जुन ने मुझसे उसी तरह के प्रश्न किये थे जिस तरह तुम अब कर रहे हो।

अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ।
अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; आत्मा—परमात्मा हूँ; उद्धव—हे उद्धव; अमीषाम्—इन; भूतानाम्—जीवों के; सु-हृत्—शुभचिन्तक; ईश्वरः—परम नियन्ता; अहम्—मैं; सर्वाणि भूतानि—सभी जीव; तेषाम्—उनकी; स्थिति—पालन; उद्भव—सृष्टि; अप्ययः—तथा संहार।

हे उद्धव, मैं समस्त जीवों का परमात्मा हूँ, अतएव मैं स्वाभाविक रूप से उनका हितेच्छु तथा परम नियन्ता हूँ। सारे जीवों का स्रष्टा, पालक तथा संहर्ता होने से मैं उनसे भिन्न नहीं हूँ।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी यह इंगित करते हैं कि भगवान् अपने ऐश्वर्यों के साथ निकट और दूर का सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् सारे जीवों से भिन्न नहीं हैं क्योंकि वे जीव उन्हीं से उत्पन्न हैं और उनसे ही सम्बद्ध हैं। भगवान् ने *भगवद्गीता* के दशम अध्याय (१०.२०) में अर्जुन से ऐसी ही व्याख्या की थी जिनके प्रारम्भिक शब्द थे *अहमात्मा।* यद्यपि भगवान् अपने बाह्य या भौतिक ऐश्वर्यों का वर्णन करते हैं, किन्तु भगवान् का पद सदैव दिव्य तथा अभौतिक है। जिस तरह शरीर के भीतर चेतन आत्मा शरीर को जीवन प्रदान करता है उसी तरह भगवान् अपनी परम शक्ति से समस्त विश्व के ऐश्वर्यों को जीवन प्रदान करते हैं।

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ।
गुनाणां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; गतिः—चरम गन्तव्य; गति-मताम्—उन्नति चाहने वालों के; कालः—काल, समय; कलयताम्—नियंत्रण रखने वालों के; अहम्—मैं; गुनाणाम्—प्रकृति के गुणों के; च—भी; अपि—ही; अहम्—मैं; साम्यम्—भौतिक सन्तुलन; गुणिनि—पवित्रों में; औत्पत्तिकः—स्वाभाविक; गुणः—गुण।

मैं उन्नति चाहने वालों का चरम गन्तव्य हूँ और जो नियंत्रण रखना चाहते हैं उनमें मैं काल हूँ। मैं भौतिक गुणों की साम्यावस्था हूँ और पवित्रों में मैं स्वाभाविक गुण हूँ।

गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम् ।
सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गुणिनाम्—गुणयुक्त वस्तुओं में; अपि—निस्सन्देह; अहम्—मैं; सूत्रम्—मुख्य सूत्र तत्त्व; महताम्—महान् वस्तुओं में; च—भी; महान्—समग्र भौतिक अभिव्यक्ति; अहम्—मैं; सूक्ष्माणाम्—सूक्ष्म वस्तुओं में; अपि—निस्सन्देह; अहम्—मैं; जीवः—जीव; दुर्जयानाम्—दुर्जेय वस्तुओं में; अहम्—मैं; मनः—मन।

गुणयुक्त वस्तुओं में मैं प्रकृति की मुख्य अभिव्यक्ति हूँ और महान् वस्तुओं में मैं समग्र सृष्टि हूँ। सूक्ष्म वस्तुओं में मैं आत्मा हूँ और दुर्जेय वस्तुओं में मैं मन हूँ।

हिरण्यगर्भो वेदानां मन्त्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ।
अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि च्छन्दुसामहम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

हिरण्य-गर्भः—भगवान् ब्रह्मा; वेदानाम्—वेदों में; मन्त्राणाम्—मंत्रों के; प्रणवः—ॐकार; त्रि-वृत्—तीन अक्षरों वाला; अक्षराणाम्—अक्षरों के; अ-कारः—अ अर्थात् प्रथम अक्षर; अस्मि—हूँ; पदानि—तीन पंक्ति का गायत्री मंत्र; छन्दसाम्—छन्दों में; अहम्—मैं।

वेदों में मैं आदि शिक्षक ब्रह्मा और समस्त मंत्रों में मैं तीन अक्षरों (मात्राओं) वाला ॐकार हूँ। अक्षरों में मैं प्रथम अक्षर अ (अकार) और पवित्र छन्दों में गायत्री मंत्र हूँ।

इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ।
आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३॥

शब्दार्थ

इन्द्रः—इन्द्र; अहम्—मैं; सर्व-देवानाम्—सभी देवताओं में; वसूनाम्—वसुओं में; अस्मि—मैं; हव्य-वाट्—आहुतियों का वाहक, अग्नि देव; आदित्यानाम्—अदिति-पुत्रों में; अहम्—मैं; विष्णुः—विष्णु; रुद्राणाम्—रुद्रों में; नील-लोहितः—शिवजी।

मैं देवताओं में इन्द्र तथा वसुओं में अग्नि हूँ। मैं अदिति-पुत्रों में विष्णु तथा रुद्रों में भगवान् शिव हूँ।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु वामनदेव के रूप में अदिति के पुत्र रूप में प्रकट हुए।

ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः ।
देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-ऋषीणाम्—सन्त ब्राह्मणों में; भृगुः—भृगु मुनि; अहम्—मैं; राज-ऋषीणाम्—सन्त राजाओं में; अहम्—मैं; मनुः—मनु; देव-ऋषीणाम्—सन्त देवताओं में; नारदः—नारद मुनि; अहम्—मैं; हविर्धानी—कामधेनु; अस्मि—हूँ; धेनुषु—गौवों में।

मैं ब्रह्मर्षियों में भृगु मुनि तथा राजर्षियों में मनु हूँ। देवर्षियों में मैं नारद मुनि तथा गौवों में कामधेनु हूँ।

सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् ।
प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितृणामहमर्यमा ॥ १५॥

शब्दार्थ

सिद्ध-ईश्वराणाम्—सिद्धजनों में; कपिलः—कपिल भगवान्; सुपर्णः—गरुड़; अहम्—मैं; पतत्रिणाम्—पक्षियों में; प्रजापतीनाम्—मनुष्यों के जनकों में; दक्षः—दक्ष; अहम्—मैं; पितृणाम्—पितरों में; अहम्—मैं; अर्यमा—अर्यमा।

मैं सिद्धों में भगवान् कपिल तथा पक्षियों में गरुड़ हूँ। प्रजापतियों में मैं दक्ष तथा पितरों में

अर्यमा हूँ।

मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् ।
सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; विद्धि—जानो; उद्धव—हे उद्धव; दैत्यानाम्—दिति-पुत्रों या असुरों में; प्रह्लादम्—प्रह्लाद महाराज; असुर-ईश्वरम्—असुरों के ईश्वर; सोमम्—चन्द्रमा; नक्षत्र-ओषधीनाम्—नक्षत्रों तथा औषधियों में; धन-ईशम्—धन के स्वामी, कुवेर; यक्ष-रक्षसाम्—यक्षों तथा राक्षसों में।

हे उद्धव, तुम मुझे दिति के असुर पुत्रों में असुरों का साधु-स्वामी प्रह्लाद महाराज जानो। मैं नक्षत्रों तथा औषधियों में उनका स्वामी चन्द्र हूँ और यक्षों तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुवेर हूँ।

ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ।
तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

ऐरावतम्—ऐरावत नामक हाथी; गज-इन्द्राणाम्—राजसी हाथियों में; यादसाम्—जलचरों में; वरुणम्—वरुण; प्रभुम्—समुद्रों का स्वामी; तपताम्—उष्मा उत्पन्न करने वाली वस्तुओं में; द्यु-मताम्—प्रकाश करने वाली वस्तुओं में; सूर्यम्—सूर्य हूँ; मनुष्याणाम्—मनुष्यों में; च—भी; भू-पतिम्—राजा।

मैं राजसी हाथियों में ऐरावत और जलचरों में समुद्रों का अधिपति वरुण हूँ। समस्त उष्मा तथा प्रकाश प्रदान करने वाली वस्तुओं में मैं सूर्य और मनुष्यों में राजा हूँ।

तात्पर्य : यह जान लेना महत्त्वपूर्ण है कि भगवान् कृष्ण इस ब्रह्माण्ड के सभी कोटियों में स्वामी या ईश्वर के रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रीकृष्ण के समान न तो कोई अधिशासक है और पूर्ण है, न ही कोई उनके ऐश्वर्यों का अनुमान लगा सकता है। वे निस्सन्देह भगवान् हैं।

उच्चैःश्रवास्तुरङ्गाणां धातूनामस्मि काञ्चनम् ।
यमः संयमतां चाहम्सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८॥

शब्दार्थ

उच्चैःश्रवाः—उच्चैश्रवा नामक घोड़ा; तुरङ्गाणाम्—घोड़ों में; धातूनाम्—धातुओं में; अस्मि—हूँ; काञ्चनम्—सोना; यमः—यमराज; संयमताम्—दंड देने वालों तथा दमन करने वालों में; च—भी; अहम्—मैं; सर्पाणाम्—सर्पों में; अस्मि—हूँ; वासुकिः—वासुकि।

घोड़ों में मैं उच्चैश्रवा तथा धातुओं में स्वर्ण हूँ। दंड देने वालों तथा दमन करने वालों में मैं यमराज हूँ और सर्पों में वासुकि हूँ।

नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् ।
आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

नाग-इन्द्राणाम्—अनेक फनों वाले श्रेष्ठ सर्पों में; अनन्तः—अनन्तदेव; अहम्—मैं; मृग-इन्द्रः—सिंह; शृङ्गि-दंष्ट्रिणाम्—पैने सींग तथा दाँत वाले पशुओं में; आश्रमाणाम्—चारों आश्रमों में; अहम्—मैं; तुर्यः—चौथा, संन्यास; वर्णानाम्—चार वृत्तिपरक वर्णों में; प्रथमः—प्रथम, ब्राह्मण; अनघ—हे निष्पाप।

हे निष्पाप उद्धव, श्रेष्ठ सर्पों में मैं अनन्तदेव हूँ और पैने सींग तथा दाँत वाले पशुओं में मैं सिंह हूँ। आश्रमों में मैं चौथा आश्रम अर्थात् संन्यास आश्रम हूँ और चारों वर्णों में प्रथम वर्ण अर्थात् ब्राह्मण हूँ।

तीर्थानां स्रोतसां गङ्गा समुद्रः सरसामहम् ।
आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तिर्थानाम्—तीर्थस्थानों में; स्रोतसाम्—सोतों या प्रवहमान वस्तुओं में; गङ्गा—पवित्र गंगा; समुद्रः—समुद्र; सरसाम्—स्थिर जलाशयों में; अहम्—मैं; आयुधानाम्—हथियारों में; धनुः—धनुष; अहम्—मैं; त्रि-पुर-घ्नः—शिवजी; धनुः-मताम्—धनुर्धारियों में।

पवित्र तथा प्रवहमान वस्तुओं में मैं पवित्र गंगा हूँ और स्थिर जलाशयों में समुद्र हूँ। हथियारों में मैं धनुष और हथियार चलाने वालों में मैं त्रिपुरारि शिव हूँ।

तात्पर्य : शिवजी ने मय दानव द्वारा निर्मित तीन असुर-पुरियों को अपने धनुष से आच्छादित कर दिया था।

धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ।
वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

धिष्ण्यानाम्—आवास; अस्मि—हूँ; अहम्—मैं; मेरुः—सुमेरु पर्वत; गहनानाम्—दुर्गम स्थानों में; हिमालयः—हिमालय; वनस्पतीनाम्—वृक्षों में; अश्वत्थः—बरगद का वृक्ष; ओषधीनाम्—पौधों में; अहम्—मैं; यवः—जौ।

निवासस्थानों में मैं सुमेरु पर्वत हूँ और दुर्गम स्थानों में हिमालय हूँ। वृक्षों में मैं पवित्र वट-वृक्ष तथा धान्यों में मैं जौ (यव) हूँ।

तात्पर्य : *ओषधीनाम्* से उन वृक्षों का सूचन होता है, जो एक बार फल देकर सूख जाते हैं। इनमें से अन्न उत्पन्न करने वाले (धान्य) मनुष्य जीवन का पालन करने वाले हैं और कृष्ण का प्रतिनिधित्व

करते हैं। अन्न के बिना न तो दुग्ध उत्पाद सम्भव है न ही वैदिक अग्नि यज्ञ उचित रूप से सम्पन्न किये जा सकते हैं।

पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ।
स्कन्दोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२॥

शब्दार्थ

पुरोधसाम्—पुरोहितों में; वसिष्ठः—वसिष्ठ मुनि; अहम्—मैं हूँ; ब्रह्मिष्ठानाम्—वैदिक निष्कर्ष को मानने वालों में; बृहस्पतिः—देवताओं के गुरु; स्कन्दः—कार्तिकेय; अहम्—मैं हूँ; सर्व-सेनान्याम्—समस्त सेनानियों में; अग्रण्याम्—पवित्र जीवन में अग्रणियों में; भगवान्—महापुरुष; अजः—ब्रह्मा।

पुरोहितों में मैं वसिष्ठ मुनि और वैदिक संस्कृति के अग्रगण्यों में बृहस्पति हूँ। मैं महान् सेनानियों में स्कन्द और उच्च जीवन बिताने वालों में महापुरुष ब्रह्मा हूँ।

यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ।
वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३॥

शब्दार्थ

यज्ञानाम्—यज्ञों में; ब्रह्म-यज्ञः—वेदाध्ययन; अहम्—मैं हूँ; व्रतानाम्—व्रतों में; अविहिंसनम्—अहिंसा; वायु—वायु, हवा; अग्नि—आग; अर्क—सूर्य; अम्बु—जल; वाक्—तथा वाणी; आत्मा—साक्षात्; शुचीनाम्—पवित्र करने वालों में; अपि—निस्सन्देह; अहम्—मैं हूँ; शुचिः—शुद्ध।

यज्ञों में मैं वेदाध्ययन और व्रतों में अहिंसा हूँ। पवित्र करने वाली सभी वस्तुओं में मैं वायु, अग्नि, सूर्य, जल तथा वाणी हूँ।

योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम् ।
आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

योगानाम्—योगाभ्यास की आठ अवस्थाओं (अष्टांग) में; आत्म-संरोधः—अन्तिम अवस्था, समाधि जिसमें आत्मा मोह से मुक्त हो जाता है; मन्त्रः—कुशल सलाहकार; अस्मि—मैं हूँ; विजिगीषताम्—विजय चाहने वालों में; आन्वीक्षिकी—आध्यात्मिक विज्ञान जिसके बल पर पदार्थ तथा आत्मा में अन्तर किया जा सकता है; कौशलानाम्—दक्ष विवेक की समस्त विधियों में; विकल्पः—अनुभूति वैविध्य; ख्याति-वादिनाम्—निर्विशेषवादियों में।

मैं योग की आठ उत्तरोत्तर अवस्थाओं में से अन्तिम अवस्था—समाधि—हूँ जिसमें आत्मा मोह से पूर्णतया पृथक् हो जाता है। विजय की आकांक्षा रखने वालों में मैं कुशल राजनीतिक सलाहकार हूँ और दक्ष विवेकी विधियों में मैं आत्मज्ञान हूँ जिसके द्वारा पदार्थ से आत्मा को विभेदित किया जाता है। मैं समस्त निर्विशेषवादियों (ज्ञानियों) में अनुभूति-वैविध्य हूँ।

तात्पर्य : कोई भी विज्ञान दक्ष विवेक-शक्ति पर आधारित होता है। एकान्तिक तथा परस्पर क्रियाशील घटकों की पटु परिभाषा द्वारा, मनुष्य किसी भी क्षेत्र में दक्ष बन जाता है। अन्त में बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति पदार्थ से आत्मा को विलग कर सकता है और पदार्थ तथा आत्मा के गुणों का वर्णन सच्चाई के एकान्तिक तथा परस्पर क्रियाशील घटकों के रूप में कर सकता है। असंख्य दार्शनिक चिन्तनों का प्रफलन भौतिक संसार के भीतर अनुभूतियों की पृथक् विधियों के कारण होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है—*सर्वस्य चाहंहृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—भगवान् हर एक के हृदय में स्थित हैं और उसकी इच्छा तथा योग्यता के अनुसार ही उसे ज्ञान या अज्ञान की विशेष मात्रा प्रदान करते हैं। इस प्रकार भगवान् स्वयं ही दार्शनिक चिन्तन की संसारी विधि के आधार स्वरूप हैं क्योंकि वे बद्धजीवों में अनुभूति के पृथक् तथा एकान्तर गुण उत्पन्न करते हैं। यह समझने की बात है कि भगवान् कृष्ण से सुन कर ही पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, किसी बद्ध दार्शनिक से नहीं जो अपनी निजी इच्छाओं के पर्दे से होकर भगवान् की सृष्टि की अधूरी अनुभूति प्राप्त करता है।

स्त्रीणां तु शतरूपाहं पुंसां स्वायम्भुवो मनुः ।
नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

स्त्रीणाम्—स्त्रियों में; तु—निस्सन्देह; शतरूपा—शतरूपा; अहम्—मैं हूँ; पुंसाम्—पुरुषों में; स्वायम्भुवः मनुः—महान् प्रजापति स्वायंभुव मनु; नारायणः—नारायण मुनि; मुनीनाम्—मुनियों में; च—भी; कुमारः—सनत्कुमार; ब्रह्मचारिणाम्—ब्रह्मचारियों में।

मैं स्त्रियों में शतरूपा और पुरुषों में उसका पति स्वायम्भुव मनु हूँ। मुनियों में मैं नारायण हूँ और ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार हूँ।

धर्माणामस्मि सन्न्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ।
गुह्यानां सुनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

धर्माणाम्—धार्मिक सिद्धान्तों में; अस्मि—हूँ; सन्न्यासः—सन्यास, वैराग्य; क्षेमाणाम्—समस्त प्रकार की सुरक्षा में; अबहिः-मतिः—अन्तर की (आत्मा की) सतर्कता; गुह्यानाम्—सारे रहस्यों में; सुनृतम्—मधुर वाणी; मौनम्—मौन, चुप्पी; मिथुनानाम्—मिथुनरत युग्म; अजः—आदि प्रजापति, ब्रह्मा; तु—निस्सन्देह; अहम्—मैं हूँ।

धार्मिक सिद्धान्तों में मैं संन्यास हूँ और समस्त प्रकार की सुरक्षा में अन्तस्थ नित्य आत्मा की

चेतना हूँ। रहस्यों में मैं मधुर वाणी तथा मौन हूँ तथा सम्भोगरत युग्मों में ब्रह्मा हूँ।

तात्पर्य : जिस व्यक्ति को अपने भीतर नित्य आत्मा की अनुभूति हो जाती है, वह किसी भी भौतिक स्थिति से डरता नहीं। इस तरह वह संन्यास धारण करने के योग्य होता है। निश्चय ही, भय भौतिक जीवन के महान् कष्टों में से है, अतएव निर्भीकता का उपहार अत्यन्त मूल्यवान है और यह भगवान् कृष्ण का प्रतिनिधित्व करता है। सामान्य मधुर वाणी तथा मौन दोनों में ही बहुत कम रहस्यों का उद्घाटन हो पाता है, अतएव कूट-नीति तथा मौन दोनों ही गोपनीयता में सहायक हैं। ब्रह्मा मिथुनरत युग्मों में प्रमुख हैं क्योंकि ब्रह्मा के ही शरीर से स्वायंभुव मनु तथा शतरूपा का आदि सुन्दर जोड़ा निकला था जैसाकि *श्रीमद्भागवत* के तृतीय स्कन्ध के बारहवें अध्याय में वर्णन आया है।

संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाभिजित् ॥ २७॥

शब्दार्थ

संवत्सरः—वर्ष; अस्मि—हूँ; अनिमिषाम्—काल के सतर्क चक्रों में; ऋतूनाम्—ऋतुओं में; मधु-माधवौ—वसन्त; मासानाम्—महीनों में; मार्गशीर्षः—मार्गशीर्ष, माघ (नवम्बर-दिसम्बर); अहम्—मैं हूँ; नक्षत्राणाम्—नक्षत्रों में; तथा—उसी प्रकार; अभिजित्—अभिजित नामक।

सतर्क कालचक्रों में मैं वर्ष हूँ और ऋतुओं में वसन्त हूँ। महीनों में मैं मार्गशीर्ष तथा नक्षत्रों में शुभ अभिजित हूँ।

अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः ।
द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; युगानाम्—युगों में; च—भी; कृतम्—सत्ययुग; धीराणाम्—स्थिर मुनियों में; देवलः—देवल; असितः—असित; द्वैपायनः—कृष्ण द्वैपायन; अस्मि—हूँ; व्यासानाम्—वेदों के संग्रहकर्ताओं में; कवीनाम्—विद्वानों में; काव्यः—शुक्राचार्य; आत्म-वान्—आध्यात्मिक विज्ञान में दक्ष।

युगों में मैं सत्ययुग और स्थिर मुनियों में देवल तथा असित हूँ। वेदों का विभाजन करने वालों में मैं कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास हूँ और विद्वानों में मैं आध्यात्मिक विज्ञान का ज्ञाता शुक्राचार्य हूँ।

वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ।
किम्पुरुषानां हनुमान्विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ २९॥

शब्दार्थ

वासुदेवः—भगवान्; भगवताम्—भगवान् नाम के अधिकारियों में; त्वम्—तुम; तु—निस्सन्देह; भागवतेषु—मेरे भक्तों में; अहम्—मैं हूँ; किम्पुरुषाणाम्—किम्पुरुषों में; हनुमान्—हनुमान; विद्याधराणाम्—विद्याधरों में; सुदर्शनः—सुदर्शन।

भगवान् नाम के अधिकारियों में मैं वासुदेव हूँ तथा हे उद्धव, तुम निस्सन्देह भक्तों में मेरा प्रतिनिधित्व करते हो। मैं किम्पुरुषों में हनुमान हूँ और विद्याधरों में सुदर्शन हूँ।

तात्पर्य : वैदिक वाङ्मय का कथन है कि जिसे सारे जीवों की सृष्टि तथा संहार का पूरा पूरा ज्ञान होता है और जो सर्वज्ञ में पूर्णतया स्थित है, वह भगवान् कहलाता है। यद्यपि अनेक महापुरुषों को कभी कभी भगवान् कहा जाता है, किन्तु भगवान् वह महान् जीव है, जिसमें असीम ऐश्वर्य पाया जाता है। समूचे इतिहास में अनेक महत्त्वपूर्ण पुरुषों को ''भगवान्'' कहा गया है, किन्तु अन्ततोगत्वा भगवान् एक हैं। भगवान् के *चतुर्व्यूह* में पहला प्राकट्य वासुदेव है, जो यहाँ पर विष्णु तत्त्व कोटि में भगवान् के सारे अंशों का प्रतिनिधित्व करता है।

रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् ।
कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविःष्वहम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

रत्नानाम्—रत्नों में; पद्म-रागः—लाल; अस्मि—हूँ; पद्म-कोशः—कमल की कली; सु-पेशसाम्—सुन्दर वस्तुओं में; कुशः—पवित्र कुश नामक तृण; अस्मि—हूँ; दर्भ-जातीनाम्—सभी प्रकार के तृणों में; गव्यम्—गायसे प्राप्त पदार्थ; आज्यम्—घी की आहुति; हविःषु—हवियों में; अहम्—मैं हूँ।

रत्नों में मैं लाल हूँ और सुन्दर वस्तुओं में कमल की कली हूँ। सभी प्रकार के तृणों में मैं पवित्र कुश हूँ और आहुतियों में घी तथा गाय से प्राप्त होने वाली अन्य सामग्री हूँ।

तात्पर्य : *पञ्च-गव्य* गाय से प्राप्त होने वाली पाँच यज्ञ सामग्रियों का सूचक है। ये हैं दूध, घी, दही, गोबर तथा गोमूत्र। गाय इतनी मूल्यवान होती है उसका गोबर तथा मूत्र भी कृमिनाशक है और यज्ञ में आहुति करने योग्य है। कुश तृण का भी उपयोग धार्मिक अवसरों पर किया जाता है। महाराज परीक्षित ने अपने जीवन के अन्तिम सप्ताह में कुश के आसन पर ही अपने को विराजमान किया था। सुन्दर वस्तुओं में कमल की कली कमल की पंखड़ियों से बनी होती है और भगवान् कृष्ण का प्रतिनिधित्व करती है। रत्नों में लाल भी भगवान् कृष्ण की कौस्तुभ मणि के समान है और यह उनकी शक्ति का प्रतीक है।

व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ।
तितिक्षास्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

व्यवसायिनाम्—व्यापारियों में; अहम्—मैं हूँ; लक्ष्मीः—लक्ष्मी; कितवानाम्—कपट करने वालों में; छल-ग्रहः—जुए का खेल; तितिक्षा—क्षमाशीलता; अस्मि—हूँ; तितिक्षूणाम्—सहिष्णुओं में; सत्त्वम्—अच्छाई; सत्त्व-वताम्—सतोगुणियों में; अहम्—मैं हूँ।

व्यापारियों में मैं लक्ष्मी हूँ और कपट करने वालों में मैं जुआ (द्यूत क्रीड़ा) हूँ। सहिष्णुओं में मैं क्षमाशीलता और सतोगुणियों में सद्गुण हूँ।

ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्वताम् ।
सात्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परा ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

ओजः—ऐन्द्रिय बल; सहः—तथा मानसिक बल; बलवताम्—बलवानों में; कर्म—भक्तिमय कर्म; अहम्—मैं; विद्धि—जानो; सात्वताम्—भक्तों में; सात्वताम्—भक्तों में; नव-मूर्तीनाम्—मेरे नौ रूपों में पूजा करने वाला; आदि-मूर्तिः—आदि रूप, वासुदेव; अहम्—मैं हूँ; परा—परम।

बलवानों में मैं शारीरिक तथा मानसिक बल हूँ और अपने भक्तों का भक्तिमय कर्म हूँ। मेरे भक्तगण मेरी पूजा नौ विभिन्न रूपों में करते हैं जिनमें से मैं आदि तथा प्रमुख वासुदेव हूँ।

तात्पर्य : सामान्यतया वैष्णवजन भगवान् की पूजा वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वराह, नृसिंह तथा ब्रह्मा के रूप में करते हैं। जब ब्रह्मा पद का स्थान लेने वाला उपयुक्त जीव नहीं मिलता, तो भगवान् स्वयं ही यह पद ग्रहण करते हैं, इसीलिए इस सूची में ब्रह्मा का नाम लिया गया है। भगवान् विष्णु कभी कभी इन्द्र के रूप में तो कभी ब्रह्मा के रूप में प्रकट होते हैं। यहाँ विष्णु ही ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुए हैं।

विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् ।
भूधराणामहं स्थैर्यं गन्धमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

विश्वावसुः—विश्वावसु; पूर्वचित्तिः—पूर्वचित्ति; गन्धर्व-अप्सरसाम्—गन्धर्वों तथा अप्सराओं में; अहम्—मैं हूँ; भूधराणाम्—पर्वतों में; अहम्—मैं हूँ; स्थैर्यम्—स्थिरता; गन्ध-मात्रम्—गन्ध की अनुभूति; अहम्—मैं हूँ; भुवः—पृथ्वी की।

मैं गन्धर्वों में विश्वावसु तथा स्वर्गिक अप्सराओं में पूर्वचित्ति हूँ। मैं पर्वतों की स्थिरता तथा पृथ्वी की सुगन्ध हूँ।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.९) में भगवान् कृष्ण कहते हैं—*पुन्यो गन्धः पृथिव्यां च*—मैं पृथ्वी की

सुगन्ध हूँ। पृथ्वी की मूल गन्ध अत्यन्त सुहावनी होती है और वह भगवान् कृष्ण का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि कृत्रिम रूप से अमोहक गन्धें उत्पन्न की जा सकती हैं, किन्तु वे भगवान् का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं।

अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ।
प्रभा सूर्येन्दुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

अपाम्—जल का; रसः—स्वाद; च—भी; परमः—सर्वश्रेष्ठ; तेजिष्ठानाम्—अत्यन्त तेजवान वस्तुओं में; विभावसुः—सूर्य; प्रभा—तेज; सूर्य—सूर्य का; इन्दु—चन्द्रमा; ताराणाम्—तथा तारों में; शब्दः—ध्वनि; अहम्—मैं हूँ; नभसः—आकाश का; परः—दिव्य।

मैं जल का मधुर स्वाद हूँ और चमकीली वस्तुओं में सूर्य हूँ। मैं सूर्य, चन्द्रमा तथा तारों का प्रकाश हूँ और आकाश में ध्वनित होने वाला दिव्य शब्द हूँ।

ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ।
भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसङ्क्रमः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

ब्रह्मण्यानाम्—ब्राह्मण संस्कृति के उपासकों में; बलिः—विरोचन का पुत्र, बलि महाराज; अहम्—मैं हूँ; वीराणाम्—वीरों में; अहम्—मैं हूँ; अर्जुनः—अर्जुन; भूतानाम्—समस्त जीवों का; स्थितिः—पालन-पोषण; उत्पत्तिः—उत्पत्ति; अहम्—मैं हूँ; वै—निस्सन्देह; प्रतिसङ्क्रमः—संहार।

ब्राह्मण संस्कृति के उपासकों में मैं विरोचन-पुत्र बलि महाराज हूँ और वीरों में अर्जुन हूँ। निस्सन्देह, मैं समस्त जीवों की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार हूँ।

गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षनम् ।
आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ ३६॥

शब्दार्थ

गति—पाँवों की हरकत (चलना, दौना आदि); उक्ति—वाणी; उत्सर्ग—वीर्यस्खलन; उपादानम्—हाथों से ग्रहण करना; आनन्द—जननांगों का भौतिक सुख; स्पर्श—स्पर्श; लक्षणम्—दृष्टि; आस्वाद—स्वाद; श्रुति—सुनना; अवघ्राणम्—महक, सुगन्ध; अहम्—मैं हूँ; सर्व-इन्द्रिय—सारी इन्द्रियों के; इन्द्रियम्—उनके विषयों को अनुभव करने की शक्ति।

मैं पाँच कर्मेन्द्रियों—पाँव, वाणी, गुदा, हाथ तथा जननांग—के साथ ही पाँच ज्ञानेन्द्रियों—स्पर्श, दृष्टि, स्वाद, श्रवण तथा गन्ध—का कार्यकलाप हूँ। मैं शक्ति भी हूँ जिससे प्रत्येक इन्द्रिय अपने अपने इन्द्रिय-विषय का अनुभव करती है।

पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ।
विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ।
अहमेतत्प्रसङ्ख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

पृथिवी—पृथ्वी का सूक्ष्म रूप, गंध; वायुः—वायु का सूक्ष्म रूप, स्पर्श; आकाशः—आकाश का सूक्ष्म रूप, ध्वनि; आपः—जल का सूक्ष्म रूप, स्वाद; ज्योतिः—अग्नि का सूक्ष्म रूप, स्वरूप; अहम्—मिथ्या अहंकार; महान्—महत् तत्त्व; विकारः—सोलह तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन); पुरुषः—जीव; अव्यक्तम्—भौतिक प्रकृति; रजः—रजोगुण; सत्त्वम्—सतोगुण; तमः—तमोगुण; परम्—परमेश्वर; अहम्—मैं हूँ; एतत्—यह; प्रसङ्ख्यानम्—उपर्युक्त; ज्ञानम्—उपर्युक्त तत्त्वों के लक्षणों का ज्ञान; तत्त्व-विनिश्चयः—दृढ़ संकल्प, जो कि ज्ञान का फल है।

मैं स्वरूप, स्वाद, गंध, स्पर्श तथा ध्वनि; मिथ्या अहंकार, महत् तत्त्व; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश; जीव, भौतिक प्रकृति; सतो, रजो तथा तमोगुण; एवं दिव्य भगवान् हूँ। ये सारी वस्तुएँ, इन सबों के लक्षण तथा इस ज्ञान से उत्पन्न दृढ़ निश्चय भी मैं ही हूँ।

तात्पर्य : इस जगत में अपने निजी ऐश्वर्यों की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करने के बाद भगवान् अब उन ऐश्वर्यों का सार देते हैं, जो उनके शारीरिक तेज से विस्तार पाते हैं। *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है कि सारे ब्रह्माण्ड अपनी अनंत किस्मों, विकारों तथा ऐश्वर्यों समेत भगवान् के शारीरिक तेज में आश्रय पाते हैं। श्रील जीव गोस्वामी ने इस श्लोक की अपनी टीका में इस बात का विस्तार से वर्णन किया है।

मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ।
सर्वात्मनापि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

मया—मुझ; ईश्वरेण—परमेश्वर से; जीवेन—जीव से; गुणेन—प्रकृति के गुणों से; गुणिना—महत् तत्त्व से; विना—रहित; सर्व-आत्मना—विद्यमान सबों की आत्मा; अपि—निस्सन्देह; सर्वेण—प्रत्येक वस्तु; न—नहीं; भावः—उपस्थिति; विद्यते—है; क्वचित्—जो भी।

परमेश्वर के रूप में मैं जीव, प्रकृति के गुणों तथा महत्-तत्त्व का आधार हूँ। इस प्रकार मैं सर्वस्व हूँ और कोई भी वस्तु मेरे बिना विद्यमान नहीं रह सकती।

तात्पर्य : *महत् तत्त्व* तथा *जीव* के प्राकट्य के बिना इस भौतिक जगत में कुछ भी उपस्थित नहीं रह सकता। हमारे द्वारा अनुभव की जाने वाली प्रत्येक वस्तु जीव तथा सूक्ष्म एवं स्थूल पदार्थ का मिश्रण है। परमेश्वर ही जीव तथा पदार्थ दोनों के अस्तित्व के एकमात्र आधार हैं। परमेश्वर की कृपा के बिना कुछ भी क्षण-भर भी विद्यमान नहीं रह सकता। इसलिए किसी को इस निष्कर्ष पर पहुँचने की मूर्खता नहीं करनी चाहिए कि भगवान् भौतिक हैं। जैसाकि *भागवत* के इस स्कन्ध में स्पष्ट बतलाया

गया है, जीव तथा भगवान् दोनों ही भौतिक प्रकृति से सर्वथा परे हैं। फिर भी जीव में यह स्वप्न देखने की मनोवृत्ति रहती है कि वह भौतिक है, जबकि भगवान् अपनी तथा स्वप्नमग्न बद्धजीव दोनों की स्थिति का निरन्तर स्मरण रखते हैं। जिस तरह भगवान् दिव्य हैं उसी तरह उनका धाम भी प्रकृति के गुणों की पहुँच से बहुत दूर है। जीवन का वास्तविक उद्देश्य परिपक्व संकल्प द्वारा दिव्य भगवान्, उनके दिव्य धाम, अपनी दिव्य स्थिति तथा भगवद्धाम वापस जाने की विधि को समझना है।

सङ्ख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ।
न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सङ्ख्यानम्—गणना, गिनती; परम-अणूनाम्—अत्यन्त छोटे कणों की; कालेन—कुछ समय बाद; क्रियते—कर ली जाय; मया—मेरे द्वारा; न—नहीं; तथा—उसी प्रकार से; मे—मेरे; विभूतीनाम्—ऐश्वर्यों के; सृजतः—मेरे द्वारा निर्मित; अण्डानि—ब्रह्माण्ड; कोटिशः—करोड़ों।

भले ही मैं कुछ समय में ब्रह्माण्ड के समस्त अणुओं की गणना कर सकूँ, किन्तु असंख्य ब्रह्माण्डों में प्रदर्शित अपने समस्त ऐश्वर्यों की गणना मैं भी नहीं कर पाऊँगा।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् यह बतलाते हैं कि उद्धव को उनसे उनके ऐश्वर्यों की पूरी सूची प्राप्त करने की आशा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे स्वयं भी ऐसे ऐश्वर्यों की कोई सीमा निर्धारित नहीं कर सकते। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार *कालेन* शब्द यह सूचित करता है कि भगवान् हर अणु के भीतर हैं अतएव वे आसानी से अणुओं की पूरी संख्या तो गिन सकते हैं। पर सर्वज्ञ होते हुए भी, वे अपने ऐश्वर्यों की सही-सही संख्या नहीं बतला सकते क्योंकि वे अनन्त हैं।

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ।
वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेऽंशकः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तेजः—तेज; श्रीः—सुन्दर, महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ; कीर्तिः—यश; ऐश्वर्यम्—ऐश्वर्य; ह्रीः—दीनता; त्यागः—वैराग्य; सौभगम्—मन तथा इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाला; भगः—सौभाग्य; वीर्यम्—शक्ति; तितिक्षा—सहिष्णुता; विज्ञानम्—आध्यात्मिक ज्ञान; यत्र यत्र—जहाँ भी; सः—यह; मे—मेरा; अंशकः—अंश, विस्तार।

जो भी शक्ति, सौन्दर्य, यश, ऐश्वर्य, दीनता, त्याग, मानसिक आनन्द, सौभाग्य, शक्ति, सहिष्णुता या आध्यात्मिक ज्ञान हो सकता है, वह सब मेरे ऐश्वर्य का अंश है।

तात्पर्य : यद्यपि पिछले श्लोक में भगवान् ने कहा है कि उनके ऐश्वर्य अनन्त हैं किन्तु यहाँ पर वे

अपने ऐश्वर्यों का सारांश प्रस्तुत करते हैं।

एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः सङ्क्षेपेण विभूतयः ।
मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

एताः—ये; ते—तुमसे; कीर्तिताः—वर्णन किये गये; सर्वाः—सभी; सङ्क्षेपेण—संक्षेप में; विभूतयः—आध्यात्मिक ऐश्वर्य; मनः—मन के; विकाराः—विकार; एव—निस्सन्देह; एते—ये; यथा—तदनुसार; वाचा—शब्दों से; अभिधीयते—प्रत्येक का वर्णन किया जाता है।

मैंने तुमसे संक्षेप में अपने सारे आध्यात्मिक ऐश्वर्यों तथा अपनी सृष्टि के उन अद्वितीय भौतिक गुणों का भी वर्णन किया, जो मन से अनुभव किये जाते हैं और परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न तरीकों से परिभाषित होते हैं।

तात्पर्य : संस्कृत व्याकरण के अनुसार तथा जैसाकि श्रील श्रीधर स्वामी ने पुष्ट किया है *एताः* तथा *एते* शब्द भगवान् के दो प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन करने वाले हैं। भगवान् ने अपने ऐश्वरीय स्वांशों का यथा वासुदेव, नारायण, परमात्मा आदि का वर्णन किया है और उसके बाद भौतिक सृष्टि के प्रमुख गुणों का वर्णन किया है जिनको भगवान् के यशों के अन्तर्गत माना जाता है। भगवान् के स्वांश, यथा वासुदेव, नारायण इत्यादि भगवान् के नित्य अपरिवर्तनशील दिव्य गुण हैं जिनका सूचन *एताः* शब्द द्वारा हुआ है। किन्तु भौतिक सृष्टि के अद्वितीय पक्ष परिस्थितियों पर आश्रित होते हैं और व्यक्तिगत अनुभूति पर निर्भर करते हैं अतएव उन्हें *मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते* कह कर बतलाया गया है। श्रील जीव गोस्वामी व्याख्या करते हैं कि पर्यायवाची शब्दों की अविरोध दार्शनिक प्रयुक्ति से *एताः* भगवान् के नित्य आध्यात्मिक स्वरूपों का द्योतन करता है, जो इन्द्रियगम्य नहीं होते, जबकि *एते* उन ऐश्वर्यों का द्योतन करता है, जो बद्धजीवों द्वारा अनुभवगम्य हैं। वे यह उदाहरण देते हैं कि राजा की साज-सामग्री तथा उसके अन्तरंगी उसके भिन्नांश माने जाते हैं, इसलिए उन्हें राजसी पद प्रदान किया जाता है; इसी तरह भौतिक सृष्टि के ऐश्वर्यमय गुण भगवान् के निजी ऐश्वर्यों के रूप में प्रतिबिम्बित अंश होते हैं, अतएव उन्हें उनसे अभिन्न माना जा सकता है। किन्तु भूलकर भी यह नहीं समझना चाहिए कि ऐसे नगण्य भौतकि ऐश्वर्य भगवान् के स्वांश जैसे हैं, जो गुणात्मक तथा मात्रात्मक दृष्टि से भगवान् के ही समान हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है। ''भगवान् के बाह्य

ऐश्वर्य *मनोविकार* कहलाते हैं क्योंकि सामान्य लोग भौतिक जगत के अद्वितीय गुण को अपनी मानसिक अवस्था के अनुसार अनुभव करते हैं। इस तरह *वाचाभिधीयते* शब्द यह सूचित करता है कि बद्धजीव विशिष्ट भौतिक दशाओं के अनुसार ही भगवान् की भौतिक सृष्टि का वर्णन करते हैं। भौतिक ऐश्वर्य की प्रासंगिक तुलनात्मक परिभाषाओं के कारण ऐसे ऐश्वर्य को भगवान् के निजी रूप का प्रत्यक्ष स्वांश नहीं माना जाता। जब मनुष्य के मन की दशा किसी अनुकूल या स्नेहमयी दशा में परिणत हो जाती है, तो वह भगवान् की शक्ति की अभिव्यक्ति की परिभाषा, 'मेरा पुत्र,' 'मेरा पिता,' 'मेरा पति,' 'मेरा चाचा,' 'मेरा भतीजा,' 'मेरा मित्र' इत्यादि के रूप में करता है। वह यह भूल जाता है कि हर जीव वास्तव में भगवान् का भिन्नांश है और मनुष्य जो भी ऐश्वर्य, प्रतिमा या असाधारण गुण प्रदर्शित करता है, वे वास्तव में भगवान् की शक्तियाँ हैं। इसी तरह जब मनुष्य का मन शत्रु बनता है, तो वह सोचता है, ''यह व्यक्ति मेरा सर्वनाश कर देगा' 'मुझे इसका अन्त कर देना चाहिए' 'यह मेरा शत्रु है' या 'मैं इसका शत्रु हूँ', 'वह हन्ता है' अथवा 'उसका वध होना चाहिए'। ऐसी ही मानसिक अवस्था की अभिव्यक्ति तब भी होती है जब वह विशेष व्यक्तियों या वस्तुओं के असाधारण गुणों के प्रति आकृष्ट होता है किन्तु यह भूल जाता है कि ये वस्तुएँ भगवान् की शक्ति की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। यहाँ तक कि भगवान् के भौतिक ऐश्वर्यों की स्पष्ट अभिव्यक्ति स्वरूप इन्द्र तक को लोग गलत समझते हैं। उदाहरणार्थ, इन्द्र-पत्नी शची सोचती है कि, ''इन्द्र मेरे पति हैं' जबकि अदिति इन्द्र को अपना 'पुत्र' मानती है। जयन्त सोचता है कि इन्द्र मेरे 'पिता' हैं। बृहस्पति सोचते हैं कि वह मेरा शिष्य है और असुरगण सोचते हैं कि इन्द्र उनका निजी शत्रु है। इस तरह भिन्न भिन्न लोग उसकी परिभाषा अपनी अपनी मानसिक दशा के अनुसार करते हैं। इसीलिए भगवान् के भौतिक ऐश्वर्य, जो तुलनात्मक दृष्टि से अनुभव किए जाते हैं, *मनोविकार* कहलाते हैं, जिसका अर्थ है कि वे मानसिक दशा पर निर्भर करते हैं। ऐसी अनुभूति भौतिक है क्योंकि इसमें भगवान् को उस विशेष ऐश्वर्य का वास्तविक स्रोत नहीं माना जाता। यदि कोई मनुष्य भगवान् कृष्ण को समस्त ऐश्वर्यों का स्रोत मानता है और भगवान् के ऐश्वर्यों को पाने या उनका भोग करने की सारी इच्छाएँ त्याग देता है, तो वह इन ऐश्वर्यों के आध्यात्मिक स्वभाव को देख सकता है। उस समय, भले ही वह भौतिक जगत की विविधता या विशेषताओं का अनुभव करता रहे, तो भी वह कृष्णभावनामृत में परिपूर्ण बन जाता है। मनुष्य को शून्यवादियों की तरह

यह नहीं सोचना चाहिए कि *विष्णु तत्त्व* में भगवान् की दिव्य अभिव्यक्ति तथा मुक्त जीव भी तुलनात्मक अनुभूति के मनोविकार हैं। ऐसा व्यर्थ का विचार श्री उद्धव को भगवान् द्वारा दी गई सारी शिक्षाओं से सर्वथा विपरीत है।''

श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार *वाचा* शब्द विविध वैदिक वाङ्मय का भी द्योतक है, जो उन विधियों का वर्णन करता है जिनसे भगवान् अपना आध्यात्मिक तथा भौतिक ऐश्वर्य प्रकट करते हैं। इस प्रसंग में *यथा* शब्द अभिव्यक्ति तथा सृष्टि की विशिष्ट विधियों का सूचक है।

वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेद्रियाणि च ।
आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

वाचम्—वाणी को; यच्छ—संयम में रखो; मनः—मन को; यच्छ—संयम में रखो; प्राणान्—अपने श्वास को; यच्छ—संयम में रखो; इन्द्रियाणि—इन्द्रियों को; च—भी; आत्मानम्—बुद्धि को; आत्मना—विमल बुद्धि से; यच्छ—संयम में रखो; न—कभी नहीं; भूयः—फिर; कल्पसे—तुम नीचे गिरोगे; अध्वने—संसार के मार्ग पर।

अतएव अपनी वाणी पर संयम रखो, मन को दमित करो, प्राण-वायु पर विजय पाओ, इन्द्रियों को नियमित करो तथा विमल बुद्धि के द्वारा अपनी विवेकपूर्ण प्रतिभा को अपने वश में करो। इस तरह तुम पुनः भौतिक जगत के पथ पर कभी च्युत नहीं होगे।

तात्पर्य : समस्त वस्तुओं को भगवान् की शक्ति के अंशों के रूप में देखना चाहिए और इस तरह मनसावाचाकर्मणा, बिना किसी जीव या वस्तु का महत्त्व कम करते हुए, सारी वस्तुओं के प्रति आदर-भाव प्रकट करना चाहिए। चूँकि प्रत्येक वस्तु भगवान् की है, अतएव हर वस्तु का उपयोग भगवान् की सेवा में होना चाहिए। स्वरूपसिद्ध भक्त अपना अपमान सह लेता है और किसी जीव से द्वेष नहीं रखता, न ही वह किसी को अपना शत्रु समझता है। यही व्यावहारिक प्रबुद्धता है। यद्यपि शुद्ध भक्त ऐसे लोगों की, जो भगवान् के मिशन में बाधक बनते हैं आलोचना कर सकता है, किन्तु ऐसी आलोचना व्यक्तिगत स्तर पर या किसी द्वेष के वशीभूत होकर नहीं की जाती। एक बढ़ा-चढ़ा भक्त अपने अनुयायियों को प्रताड़ित कर सकता है या आसुरी लोगों की आलोचना कर सकता है, किन्तु वह भगवान् के मिशन को अग्रसारित करने के उद्देश्य से ही ऐसा करता है, किसी व्यक्तिगत शत्रुता या ईर्ष्या-द्वेषवश नहीं। जिसने सांसारिकता को पूर्णरूपेण त्याग दिया है, उसके लिए जन्म-मृत्यु के पथ पर पुनः चलने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यो वै वाङ्मनसी संयगसंयच्छन्धिया यतिः ।
तस्य व्रतं तपो दानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; वै—निश्चय ही; वाक्-मनसी—वाणी तथा मन; संयक्—पूरी तरह; असंयच्छन्—नियंत्रण में न रखते हुए; धिया—बुद्धि से; यतिः—अध्यात्मवादी; तस्य—उसका; व्रतम्—व्रत; तपः—तपस्या; दानम्—दान; स्रवति—बह जाता है; आम—कच्चे; घट—पात्र में; अम्बु-वत्—जल के समान।

जो योगी अपनी श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा अपनी वाणी तथा मन पर पूरा नियंत्रण नहीं रखता, उसके आध्यात्मिक व्रत, तपस्या तथा दान उसी तरह बह जाते हैं जिस तरह कच्चे मिट्टी के घड़े से पानी बह जाता है।

तात्पर्य : पकाये हुए घड़े में रखी हुई कोई भी तरल वस्तु उसमें से बाहर नहीं निकलती। किन्तु यदि घड़ा कच्चा हो तो उसके भीतर भरा गया जल या अन्य तरल बह कर निकल जायेगा। इसी तरह जो योगी अपनी वाणी तथा मन को वश में नहीं रखता उसके आध्यात्मिक अनुशासन तथा तपस्या धीरे धीरे क्षीण हो जाते हैं। *दान* सूचक है अन्यों के कल्याण के लिए किए गये कार्य का। जो लोग कृष्णभावनामृत का प्रचार करके सर्वोच्च दान देने का प्रयास कर रहे हैं, उन्हें चाहिए कि वे न तो सुन्दर स्त्रियों की तुष्टि के लिए बातें करें, न ही संसारी बौद्धिक प्रतिष्ठा के प्रयास में बनावटी बुद्धिमत्ता दिखायें, न ही वे यौन सम्बन्ध के इच्छुक बनें, न प्रतिष्ठा का कोई पद पाने के लिए दिवास्वप्न देखें। अन्यथा, कृष्णभावनामृत का अभ्यास करने का उनका दृढ़ संकल्प जाता रहेगा, जिसका वर्णन यहाँ हुआ है। मनुष्य को अपने मन, इन्द्रियों तथा वाणी पर उच्च बुद्धि द्वारा नियंत्रण रखना चाहिए जिससे जीवन सफल बन सके।

तस्माद्वचो मनः प्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ।
मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; वचः—शब्द; मनः—मन; प्राणान्—तथा प्राणों को; नियच्छेत्—नियंत्रण में रखे; मत्-परायणः—मेरे प्रति श्रद्धावान्; मत्—मुझ पर; भक्ति—भक्ति से; युक्तया—युक्त; बुद्ध्या—ऐसी बुद्धि से; ततः—इस प्रकार; परिसमाप्यते—जीवन-लक्ष्य पूरा करता है।

मेरे शरणागत होकर मनुष्य को वाणी, मन तथा प्राण पर नियंत्रण रखना चाहिए और तब भक्तिमयी बुद्धि के द्वारा वह अपने जीवन-लक्ष्य को पूरा कर सकेगा।

तात्पर्य : ब्राह्मण दीक्षा के समय प्रदत्त ब्रह्मगायत्री मंत्र के उच्चारण से मनुष्य भक्तिमयी बुद्धि विकसित कर सकता है। विमल बुद्धि द्वारा, मनुष्य मनोधर्म तथा सकाम कर्म द्वारा प्रदत्त फलों से विरत हो जाता है और भगवान् की संपूर्ण शरण ग्रहण कर लेता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''भगवान् की विभूतियाँ'' नामक सोलहवें अध्याय का श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुआ।